जीवाजीवाभिगम सूत्र

श्री प्रकाश सालेचा

जीवाजीवाभिगम में जीव एवं अजीव के संबंध में विवेचन हुआ है। इसकी नौ प्रतिपत्तियों में जीव विषयक विवेचन ही मुख्य है, अजीव की चर्चा न्यून है। जीव के विभिन्न प्रकारों का विवेचन करने के साथ इसमें जम्बूद्वीप, विमान, पर्वत आदि खगोल--भूगोल विषयक जानकारी का भी समावेश है। जीवजगत के विशेष अध्ययन के लिए यह सूत्र विशेष उपयोगी है। संस्कृत (जैनदर्शन) में एम.ए. एवं वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री प्रकाश जी सालेचा ने जीवाजीवाभिगम सूत्र का संक्षेप में परिचय दिया है। **—सम्पादक**

जीवाजीवाभिगम सूत्र में अजीव तत्त्व का संक्षेप में तथा जीव तत्त्व का विस्तार से वर्णन किया गया है। जीव एवं अजीव तत्त्व का वर्णन करने के कारण इस सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है, जीवतत्त्व के वर्णन की मुख्यता होने से इसका अपर नाम जीवाभिगम भी है।

इसके अध्ययन से जीव एवं अजीव तत्त्व की सम्पूर्ण जानकारी हो सकती है। भगवान महावीर ने स्पष्ट किया कि जो जीव व अजीव तत्त्व को नहीं जानता वह मोक्षमार्ग को कैसे समझ सकेगा। साधक को सर्वप्रथम जीव व अजीव तत्त्व का ज्ञान करना आवश्यक माना गया है। इसी को जैन दर्शन में भेद--विज्ञान का नाम दिया गया है। जीव एवं अजीव की भिन्नता का बोध प्राप्त किये बिना जीव का मोक्ष संभव नहीं है। इस दृष्टिकोण से साधक के लिये जीवाजीवाभिगम सूत्र का अध्ययन करना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर एवं इन्द्रभूति गौतम के बीच प्रश्नोत्तर के रूप में जीव अजीव के भेद--प्रभेदों पर विशद चर्चा हुई। उसी चर्चा को आचार्यों ने जीवाजीवाभिगम नामक सूत्र में प्रतिष्ठापित किया है।

जीवाजीवाभिगम सूत्र की विषय वस्तु

प्रस्तुत आगम में नौ प्रतिपत्तियाँ (प्रकरण) हैं। प्रथम प्रतिपत्ति में जीवाभिगम और अजीवाभिगम का विवेचन किया गया है। अभिगम का शाब्दिक अर्थ परिच्छेद अथवा ज्ञान है।

जैन दर्शन में नौ तत्त्व मान्य हैं— जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनमें दो तत्त्व मुख्य मान्य हैं— जीव व अजीव। शेष सात तत्त्व इन दोनों तत्त्वों के सम्मिलन व वियोग की परिणति मात्र हैं। इसी कारण प्रभु महावीर ने साधक एवं श्रावक को नवतत्त्व की सम्पूर्ण जानकारी करने की आज्ञा प्रदान की है। नवतत्त्व का ज्ञाता ही साधना के क्षेत्र में अपने चरण बढ़ा सकता है। संसार के अन्य आस्तिक दर्शनों ने भी इस प्रकार दो मूलभूत तत्त्वों को स्वीकार किया है। वेदान्त दर्शन ने इन दो तत्त्वों को ब्रह्म और माया के रूप में स्वीकार किया है। सांख्य दर्शन ने पुरुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और प्रकृति के रूप में एवं बौद्धों ने विज्ञानघन और वासना के रूप में स्वीकार किया है। वैदिक दर्शन ने आत्म-तत्त्व व भौतिक तत्त्व के रूप में इसी बात को मान्यता प्रदान की है। अतः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आस्तिक दर्शनों के मूल में भी आत्मवाद को स्वीकार किया गया है। विशेषकर जैन दर्शन ने आत्म-तत्त्व का बहुत ही सूक्ष्मता के साथ विस्तृत विवेचन किया है। जैन चिन्तन धारा का प्रारम्भ ही आत्म तत्त्व से होता है और अन्त मोक्ष में। ग्यारह अंगों में प्रथम अंग आचारांग सूत्र का आरम्भ भी आत्म-जिज्ञासा से हुआ है। उसके आदि वाक्य में ही कहा गया है– संसारस्थ अनेक जीवों को यह ज्ञान नहीं होता है कि उनकी आत्मा किस दिशा से आई है और कहाँ जायेगी, वे यह भी नहीं जानते कि उनकी आत्मा जन्मान्तर में संचरण करने वाली है या नहीं, मैं पूर्वजन्म में कौन था और यहाँ से मरकर दूसरे जन्म में क्या होऊँगा, यह भी वे नहीं जानते हैं। इस प्रकार की आत्म जिज्ञासा से ही धर्म और दर्शन का उद्गम हुआ है। अतः जैन दर्शन द्वारा मान्य नव तत्त्वों में प्रथम तत्त्व जीव एवं अन्तिम तत्त्व मोक्ष है। बीच के सात तत्त्वों की निर्माण इन दो तत्त्वों के विभाव व सद्भाव में होता है। सुख देने वाला पुद्गल समूह पुण्य तत्त्व है। दुःख देने वाला और ज्ञानादि पर आवरण करने वाला पाप तत्त्व है। आत्मा की मलिन प्रवृत्ति आस्रव है। इस मलिन प्रवृत्ति को रोकना संवर है, कर्म के आवरण का आंशिक क्षीण होना निर्जरा है। कर्मपुद्गलों का आत्मा के साथ बंधना बंधतत्त्व है। कर्म के आवरणों का सर्वथा क्षीण हो जाना मोक्ष है।

प्रथम प्रतिपत्ति

तीर्थंकर परमात्मा के प्रवचन के अनुसार ही स्थविर भगवन्तों ने जीवाभिगम व अजीवाभिगम की रचना की है अर्थात् प्रज्ञापना की है। अल्प विवेचन होने के कारण पहले अजीवाभिगम का कथन किया गया है। अजीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है– रूपी अजीवाभिगम एवं अरूपी अजीवाभिगम। अरूपी अजीवाभिगम के दस भेद बताये गये हैं। धर्मास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश; अधर्मास्तिकाय के स्कंध, देश, प्रदेश; आकाशास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश और दसवाँ काल।

जैन दर्शन के अनुसार जीव और पुद्गल को गति कराने में धर्मास्तिकाय एवं जीव व पुद्गल को स्थिति प्रदान करने में अधर्मास्तिकाय सहायक है। आकाश और काल को अन्य दार्शनिकों ने स्वीकार किया है, परन्तु धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय को जैन दर्शन के सिवाय किसी ने भी नहीं माना है। जैन सिद्धान्त की अपनी यह सर्वथा मौलिक अवधारणा है। इस अवधारणा के पीछे प्रमाण व युक्ति का सुदृढ आधार है। जैनाचार्यों ने प्रमाणों से सिद्ध किया है कि लोक–अलोक की व्यवस्था के लिए कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियामक तत्त्व होना चाहिए। पुद्गल व जीव गतिशील है। इन दोनों द्रव्यों की गति लोक में ही होती है, अलोक में नहीं होती। यही कारण है कि संसार से मुक्त जीव लोक के अग्रभाग सिद्धशिला पर जाकर रूक जाते हैं, क्योंकि आगे धर्मास्तिकाय का क्षेत्र नहीं है। जीव की गति में सहायक धर्मास्तिकाय का क्षेत्र लोकप्रमाण माना गया है। अतः कहा जा सकता है कि यदि धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय नहीं होते तो लोक की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती, अतः जैन दार्शनिकों ने गति–नियामक तत्त्व के रूप में धर्मास्तिकाय को, स्थिति-नियामक तत्त्व के रूप में अधर्मास्तिकाय की सत्ता को स्वीकार किया है।

आकाश द्रव्य शेष सभी द्रव्यों को आश्रय देता है, स्थान प्रदान करता है, अवकाश देता है। आकाश की सत्ता तो सब दर्शनों ने मानी है। यदि आकाश नहीं होता तो जीव व पुद्गल कहाँ रहते? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय कहाँ व्याप्त होते? काल कहाँ वर्तता, पुद्गल का रंगमंच कहाँ बनता?

काल औपचारिक द्रव्य है। निश्चय नय की दृष्टि से काल, जीव और अजीव की पर्याय है। व्यवहार नय की दृष्टि से वह द्रव्य है, वर्तना आदि इसके उपकार होने से काल उपकारक है अतः वह द्रव्य है। पदार्थों की स्थिति मर्यादा के लिये जिसका व्यवहार होता है, उसे काल माना गया है।

इसके पश्चात् प्रस्तुत ग्रन्थ में रूपी अजीवाभिगम चार प्रकार का बताया गया है– स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु। इनको संक्षेप में पाँच प्रकार का भी कहा गया है – १. वर्ण परिणत २. गन्ध परिणत ३. रस परिणत ४. स्पर्श परिणत और ५. संस्थान परिणत। यह रूपी अजीव का कथन हुआ। इसके साथ ही अजीवाभिगम का कथन भी पूर्ण हुआ।

जीवाभिगम पर विचार करते हुए शिष्य प्रश्न करता है कि जीवाभिगम कितने प्रकार का होता है? प्रश्न के उत्तर में आचार्य फरमाते हैं– जीवाभिगम दो प्रकार का होता है १. संसार समापन्नक २. असंसार समापन्नक । संसार समापन्नक अर्थात् संसारवर्ती जीवों का ज्ञान और असंसार समापन्नक अर्थात् संसारमुक्त जीवों का ज्ञान। संसार का अर्थ नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव भवों में भ्रमण करना है। जो जीव उक्त चार प्रकार के भवों में भ्रमण कर रहे हैं वे संसार समापन्नक जीव हैं और जो जीव इस भव-भ्रमण से छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं वे असंसार समापन्नक जीव हैं।

असंसार समापन्नक जीव दो प्रकार कहे गये हैं १. अनन्तर सिद्ध २. परम्पर सिद्ध। सिद्धत्व के प्रथम समय में विद्यमान सिद्ध अनन्तर सिद्ध हैं, अर्थात् उनके सिद्धत्व में समय का अन्तर नहीं है। परम्परसिद्ध वे हैं जिन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध हुए दो तीन यावत् अनन्त समय हो चुका है।

अनन्तर सिद्धों के तीर्थ, अतीर्थ आदि १५ प्रकार कहे गये हैं तथा परम्पर सिद्ध के भी अनेक प्रकार कहे गये हैं। यथा– १. प्रथम समय सिद्ध, २. द्वितीय समय सिद्ध ३. तृतीय समय सिद्ध यावत् असंख्यात समय सिद्ध और अनन्त समय सिद्ध।

संसारवर्ती जीवों के प्रकार के संबंध में नौ प्रतिपत्तियाँ बताई गई है। प्रतिपत्ति का अर्थ है प्रतिपादन, कथन। इस संबंध में नौ प्रकार के प्रतिपादन हैं।

जो आचार्य संसारवर्ती जीवों को दो प्रकार का कहते हैं वे ही आचार्य अन्य विवक्षा से संसारवर्ती जीव के तीन प्रकार भी कहते हैं। अन्य विवक्षा से चार प्रकार भी कहते हैं, यावत् अन्य विवक्षा से दस प्रकार भी कहते हैं। विवक्षा के भेद से कथनों में भेद होता है किन्तु उनमें विरोध नहीं होता।

संसार समापन्नक जीवों के भेद बताने वाली नौ प्रतिपत्तियों में से प्रथम प्रतिपत्ति का निरूपण करते हुए इस सूत्र में कहा गया है कि संसारवर्ती जीव भी दो प्रकार के हैं- त्रस और स्थावर।

द्वितीय प्रतिपत्ति

द्वितीय प्रतिपत्ति में संसार-समापन्नक जीवों के तीन भेद बताये गये हैं– १. स्त्री, २. पुरुष ३. नपुंसक।

तृतीय प्रतिपत्ति

तृतीय प्रतिपत्ति में संसार-समापन्नक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं– १. नैरयिक २. तिर्यंच योनिक ३. मनुष्य ४.देव

नैरयिक सात प्रकार के कहे गये है, यथा– प्रथम पृथ्वी नैरयिक द्वितीय पृथ्वी नैरयिक, तृतीय पृथ्वी नैरयिक, चतुर्थ पृथ्वी नैरयिक, पंचम पृथ्वी नैरयिक, षष्ठ पृथ्वी नैरयिक और सप्तम पृथ्वी नैरयिक। इस प्रतिपत्ति में सात नारकों एवं उनके गोत्रों का वर्णन किया गया है। नैरयिक जीवों उनके निवास रूप नरक भूमियों के नाम, गोत्र, विस्तार आदि क्या और कितने हैं इस प्रकार नरक भूमियों और नारकों के विषय में विविध जानकारी प्रदान की गई है।

तिर्यक् योनिक जीव पाँच प्रकार के कहे गये है– एकेन्द्रिय तिर्यक् योनिक, द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक, त्रीन्द्रिय तिर्यक्योनिक, चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक, पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक। एकेन्द्रिय के पाँच भेद बताये गये है–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय को विकलेंद्रिय कहा गया है। पंचेन्द्रिय के दो भेद किये गये हैं– पर्याप्त एवं अपर्याप्त।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिक तीन प्रकार के हैं— १. जलचर २. स्थलचर ३. खेचर।

परिसर्प स्थलचर के दो भेद बताये गये है-- १. उरपरिसर्प २. भुजपरिसर्प।

मनुष्य के दो प्रकार कहे गये हैं-- १. सम्मूर्च्छिम मनुष्य २. गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य। सम्मूर्च्छिम मनुष्य १४ अशुचि स्थानों पर पैदा होते हैं। गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये है— १. कर्मभूमिक २. अकर्मभूमिक और ३. अन्तर्द्वीपज। देव चार प्रकार के कहे गये हैं- १. भवनवासी २. वाणव्यन्तर ३. ज्योतिष्क ४. वैमानिक।

चतुर्थ प्रतिपत्ति

चतुर्थ परिपति में जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं— १. एकेन्द्रिय २. द्वीन्द्रिय ३. त्रीन्द्रिय ४. चतुरिन्द्रिय ५. पंचेन्द्रिय।

पंचम प्रतिपत्ति

पंचम प्रतिपत्ति में संसार समापन्नक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं— १. पृथ्वीकायिक २. अपूकायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. त्रसकायिक

षष्ठ प्रतिपत्ति

षष्ठ प्रतिपत्ति में संसार-समापन्नक जीव सात प्रकार के हैं-- १. नैरयिक २. तिर्यंच ३. तिरश्ची (तिर्यक् स्त्री) ४. मनुष्य ५. मानुषी ६. देव ७. देवी।

सप्तम प्रतिपत्ति

सप्तम प्रतिपत्ति में संसार-समापन्नक जीवों के आठ प्रकार कहे गये हैं। उनके अनुसार ये आठ प्रकार इस तरह हैं—

१. प्रथम समय नैरयिक २. अप्रथम समय नैरयिक ३. प्रथम समय तिर्यक् योनिक ४. अप्रथम समय तिर्यक्योनिक ५. प्रथम समय मनुष्य ६. अप्रथम समय मनुष्य ७. प्रथम समय देव ८. अप्रथम समय देव।

अष्टम प्रतिपत्ति

अष्टम प्रतिपत्ति में संसार समापन्नक जीवों के नौ भेद कहे गये हैं— १. पृथ्वीकायिक २. अपूकायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. द्वीन्द्रिय ७. त्रीन्द्रिय ८. चतुरिन्द्रिय ९. पंचेन्द्रिय।

नवम प्रतिपत्ति

नवम प्रतिपत्ति में संसार-समापन्न जीवों के दस प्रकार कहे गये हैं— १. प्रथम समय एकेन्द्रिय २. अप्रथम समय एकेन्द्रिय ३. प्रथम समय द्वीन्द्रिय ४. अप्रथम समय द्वीन्द्रिय ५. प्रथम समय त्रीन्द्रिय ६. अप्रथम समय त्रीन्द्रिय ७. प्रथम समय चतुरिन्द्रिय ८. अप्रथम समय चतुरिन्द्रिय ९. प्रथम समय पंचेन्द्रिय १०. अप्रथम समय पंचेन्द्रिय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे संसार-समापन्नक जीवों के विषय में नौ प्रतिपत्तियाँ कहीं गई हैं वैसे ही सर्वजीव के विषय में भी नौ प्रतिपत्तियाँ कही गई हैं। सर्वजीव में संसारी और मुक्त दोनों प्रकार के जीवों का समावेश होता है। अतएव इन नौ प्रतिपत्तियों में सब प्रकार के जीवों का समावेश हो जाता है। वे नौ प्रतिपत्तियाँ इस प्रकार हैं–

१. सर्वजीव दो प्रकार के कहे गये हैं– १. सिद्ध २. असिद्ध

२. सब जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं– १. सम्यग्दृष्टि २. मिथ्यादृष्टि ३. सम्यग्मिथ्या दृष्टि।

३. सब जीव चार प्रकार के कहे गये हैं–१. मनोयोगी २. वचनयोगी ३. काययोगी ४. अयोगी।

४. सब जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं–१. नैरयिक २. तिर्यंच ३. मनुष्य ४. देव ५. सिद्ध

५. सब जीव छः प्रकार के कहे गये हैं– १. औदारिक शरीरी २. वैक्रिय शरीरी ३. आहारक शरीरी ४. तैजस शरीरी ५. कार्मण शरीरी ६. अशरीरी।

६. सब जीव सात प्रकार के कहे गये हैं–१. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. त्रसकायिक ७. अकायिक।

७. सब जीव आठ प्रकार के कहे गये है– १. मतिज्ञानी २. श्रुतज्ञानी ३. अवधिज्ञानी ४. मनःपर्यवज्ञानी ५. केवलज्ञानी ६. मति-अज्ञानी ७. श्रुत-अज्ञानी ८. विभंगज्ञानी।

८. सब जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं– १. एकेन्द्रिय २. द्वीन्द्रिय ३. त्रीन्द्रिय ४. चतुरिन्द्रिय ५. नैरयिक ६. तिर्यंच ७. मनुष्य ८. देव ९. सिद्ध

९. सब जीव दस प्रकार के कहे गये हैं– १. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. द्वीन्द्रिय ७. त्रीन्द्रिय ८. चतुरिन्द्रिय ९. पंचेन्द्रिय १०. अतीन्द्रिय।

जैन तत्त्व ज्ञान प्रधानतया आत्मवादी है। जीव या आत्मा इसका केन्द्र बिन्दु है। अतएव यह कहा जा सकता है कि जैन तत्त्व ज्ञान का मूल आत्मद्रव्य (जीव) है। उसका आरम्भ आत्म-विचार से होता है तथा मोक्ष उसकी अन्तिम परिणति है। इस जीवाजीवाभिगम सूत्र में उसी आत्म द्रव्य की अर्थात् जीव की विस्तार के साथ चर्चा की गई है। अतएव यह जीवाभिगम कहा जाता है। अभिगम का अर्थ है ज्ञान। जिसके द्वारा जीव –अजीव का ज्ञान विज्ञान हो वह जीवाजीवाभिगम है। अजीव तत्त्व का सामान्य उल्लेख करने के बाद सम्पूर्ण परिचय जीव तत्त्व को लेकर दिया गया है।

उपर्युक्त वर्णित नौ प्रतिपत्तियों के माध्यम से यह बताया गया है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग-द्वेषादि विभाव परिणतियों से परिणत यह जीव संसार में कैसी–कैसी अवस्थाओं का, किन–किन रूपों का, किन–किन योनियों में जन्म मरण आदि का अनुभव करता है, इस प्रकार के विषयों का उल्लेख इन नौ प्रतिपत्तियों में किया गया है।

इस प्रकार यह सूत्र और इसकी विषयवस्तु जीव के संबंध में विस्तृत जानकारी देती है। अतएव इसका जीवाभिगम नाम सार्थक है। यह आगम जैन तत्त्वज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

प्रस्तुत सूत्र का मूल प्रमाण ४७५० (चार हजार सात सौ पचास) श्लोक ग्रन्थाग्र है। इस पर आचार्य मलयगिरि ने १४००० (चौदह हजार) ग्रन्थाग्र-प्रमाण वृत्ति लिखकर इस गम्भीर आगम के मर्म को प्रकट किया है। वृत्तिकार ने अपने बुद्धि वैभव से आगम के मर्म को हम साधारण लोगों के लिये उजागर कर हमें बहुत उपकृत किया है। इस आगम का अध्ययन करने से हमें जीव-अजीव तत्त्व का ज्ञान होने से हम आत्मा व शरीर की भिन्नता का बोध प्राप्त करते हुए अपने चरम व परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। अत: यह आगम हमारे लिये उपयोगी है।

– 295, प्रथम 'ए' रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org